आदर्श समाज की सार्वभौम व्यवस्था

मध्यस्थ दर्शन का एक सूत्र है, मानव जाति सही में एक है, गलती में अनेक। जैसे यदि एक करोड़ बच्चों को गणित का एक प्रश्न दिया जाये, सही उत्तर देते हैं तो सबका एक ही होता है, गलत हों तो करोड़ होते हैं। सही समझ के आधार पर ही सही उत्तर दिया जा सकता है। अन्यथा अनुमान या मान्यता के आधार पर ही जवाब दिया जायेगा, जिसके गलत होने की संभावना रखी ही रहेगी। वर्तमान राज्य व्यवस्था ऐसी गलती का ज्वलंत उदाहरण है। इसका आरंभ चुनाव प्रक्रिया से ही होता है। इसमें यह मान लिया गया है कि वोट देते समय वोटर गलती नहीं करेगा! इसलिए पूरे नियम–कानून और तंत्र का जोर इस पर रहता है कि सभी को स्वेच्छा से वोट डालने दिये जायें। ऐसा होने पर व्यवस्था को सफल मान लिया जाता है।

अब जब इन राज्यों और उसके आधारों की समीक्षा करते हैं तो सवालों की झड़ी लग जाती है। पहला सवाल तो यही है कि रहस्यमयी तरीके से यह कैसे मान लिया गया कि वोटर, वोट देते समय गलती नहीं करेगा! जबकि सही चुनने का सार्वभौम आधार आज तक स्पष्ट नहीं है। अभी तक व्यक्ति के सही–गलत होने का आधार उसकी धार्मिक, सामुदायिक, सामाजिक और वैचारिक मान्यताएं ही रही हैं, जो सबकी अपनी–अपनी हैं। ऐसा व्यक्ति एक के लिए सही तो दूसरे के लिए गलत होता ही है। ऐसे में विरोध बना ही रहता है। शोषण, संघर्ष, द्रोह, विद्रोह इसी का परिणाम हैं। विश्व का कोई भी राज्य इनसे मुक्त नहीं है। इनके आधार पर दूसरे से तुलना कर अपनी सफलता का दावा कर दिया जाता है। आदर्शवाद के रामराज्य और मार्क्सवाद के साम्यवाद की पहुंच भी यहीं तक थी।

अधिकतर लोग व्यवस्था के इन ढांचों से कभी संतुष्ट नहीं रहे। किसी व्यवस्था की परंपरा न बनना इसका प्रमाण है। इस समीक्षा के सार में दो बातें निकलती हैं, एक तो यह कि सदा–सदा सही रहने वाले व्यक्ति की पहचान कैसे हो, इसकी जांच का कोई तरीका आम आदमी के पास तक नहीं पहुंचा है। दूसरा या तो सफल राज्य का सही मापदंड आज तक दुनिया के सामने नहीं आया या ऐसे किसी प्रयास की तरफ दुनिया की नजर नहीं गयी है। यहां एक ऐसे ही अनुसंधानपूर्वक हुए प्रयास से परिचित कराने की कोशिश है।

यह अनुसंधान किया है अमरकंटक निवासी दार्शनिक 93 वर्षीय अग्रहार नागराज ने। उन्होंने 'अखंड राज्य, सार्वभौम व्यवस्था' का प्रारूप सामने रखा है। अभी तक प्रस्तुत मौखिक या लिखित धर्म, राज्य, अर्थ, समाज या शिक्षा संविधानों में शासन करने की नीतियां ही केंद्र में रही हैं। प्रजा को अपने अनुसार जीने–रहने के लिए विवश किया है। ऐसा न करने पर उसे पापी या अपराधी घोषित कर दंडित किया है। यही विरोध का मूल कारण रहा है क्योंकि संसार का हर व्यक्ति बिना शासित हुए स्वतंत्रतापूर्वक सही जीना–रहना चाहता है। आदमी का डिजाइन ही ऐसा है। हर व्यक्ति जन्म से जिज्ञासु, सत्यवक्ता, न्याय का याचक और सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक होता है। उसे यदि इन गुणों के साथ जीने का वातावरण उपलब्ध हो तो वह न कभी झूठ बोलना चाहेगा, न शोषण करना चाहेगा, न किसी के साथ अन्याय करेगा। नैतिकता, चरित्र, मूल्य उसकी पूंजी होते हैं। ऐसा व्यक्ति अपने हर सवाल का जवाब पाकर स्वयं में समाधानित रहता है। श्रमपूर्वक परिवार में समृद्धि हासिल करता है। समाज में अभयता और जीवों, वनस्पति, धरती के साथ बिना नुकसान पहुंचाए सहअस्तित्वपूर्वक रहता है। हर व्यक्ति की मूल चाहत इतनी ही है और यही लक्ष्य भी। यही सही व्यक्ति का स्वरूप है और यही पहचान।

ध्यान देने की बात यह है कि ऐसे व्यक्ति का मूल्यांकन वह ही कर पायेगा, जो खुद सही जीता हो, गलत जीने वाला आदमी, सही का मूल्यांकन करने की योग्यता नहीं रखता, न ही इसका अधिकारी होता है। विडंबना यह रही कि अभी सही की सार्वभौम सूचना ही लोगों के पास नहीं है, इसलिए सही जीने वाले व्यक्तियों के उपलब्ध होने या वर्तमान चुनाव व्यवस्था में सामने आने की बात करना ही बेमानी है। इसलिए आवश्यकता है जो उर्जा मौजूदा ढांचों का विरोध करने में खर्च हो रही है, वह उर्जा लोगों तक सही की सूचना उपलब्ध कराने और वातावरण निर्मित करने में खर्च की जाये। इसका आरंभ भी हो चुका है, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, पंजाब, बिहार, उड़ीसा आदि में अनेक परिवार एवं संस्थान इसमें लगे हैं।

इस प्रकार जीते हुए परिवार ही मानवीय संविधान की नींव हैं। ये ही परिवार विस्तारित होकर परिवार समूह सभा का गठन करते हैं, फिर वहीं से फैलते हुए विश्व राज्य सभा तक पहुंचते हैं। यह दस सोपानीय सार्वभौम व्यवस्था है। इसके समानांतर ही इसी क्रम से एक परिवार से शुरू होकर विश्व परिवार तक अखंड समाज की परिकल्पना है। वर्तमान चुनाव प्रणाली में गलत में सही का चुनाव करना होता है जबकि इस प्रारूप में सही में से ही व्यवस्था की जिम्मेदारी लेने वाले सही व्यक्ति का स्थान प्रतिनिधि प्रणाली से सुनिश्चित होता है।

- अजय यादव

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

भ्रष्टाचार से निपटने का फार्मूला

पूर्व राष्ट्पति डॉ एपीजे अब्दुल कलाम ने पिछले वर्ष भ्रष्टाचार से निपटने के लिए फार्मूला सुझाया था। उस समय लोकपाल बिल को लेकर सरकार और अन्ना हजारे के बीच खींचतान जोरों पर थी। इसी खींचतान में इस फार्मूले की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया जबकि भ्रष्टाचार मिटाने में यह काफी मददगार साबित हो सकता है। यह फार्मूला वास्तविकता पर आधारित शिक्षा के द्वारा भ्रष्टाचार को मिटाने की बात करता है। वास्तविक शिक्षा का मतलब ही है, आदमी में आदमी होने की योग्यता पैदा कर देना। आदमी में जब यह योग्यता पैदा हो जायेगी तो वह भ्रष्टाचार कर ही नहीं सकता। वर्तमान में शिक्षा के नाम पर क्रियाओं–घटनाओं की सूचनाएं दी जा रही हैं या थोड़ी बहुत कारीगरी यानी स्किल सिखाया जा रहा है, उसमें भी केवल नौकरी करना या धन कमाना ही उद्देश्य है। जाहिर है, जब पूरी शिक्षा ही धन कमाने के लिए है तो आदमी भ्रष्ट होगी ही। ज्यादा शिक्षित ही ज्यादा भ्रष्ट हैं, यह इसका प्रमाण है।

फिर वास्तविक शिक्षा क्या है? वास्तविकता को समझना ही वास्तविक शिक्षा है। चूंकि इस अस्तित्व में समझ ग्रहण कर सकने वाली एकमात्र इकाई आदमी ही है, इसलिए पहले आदमी की ही वास्तविकता समझना जरूरी है। आदमी के जीने के आधार पर उसे समझा जा सकता है। हर आदमी अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए जी रहा है। आवश्यकताएं देखते हैं तो दो प्रकार की हैं। पहली रोटी, कपड़ा, मकान, गाड़ी या संचार साधन। ज्यादातर आदमियों के पास ये सभी चीजें पर्याप्त हैं, फिर भी वे परेशान दिखते हैं। उससे पता चलता है कि दूसरे प्रकार की भी कोई आवश्यकता है। वह है पहचान, सम्मान, विश्वास, प्रेम पाना। गौर से देखेंगे तो पहले प्रकार की आवश्यकताएं वे हैं, जो शरीर के लिए चाहिए और कोई भी व्यवसाय करने से हासिल हो जाती हैं। जबकि दूसरे प्रकार की आवश्यकताएं दूसरे आदमी की परस्परता से ही पूरी होती हैं। और वह किसी वस्तु से पूरी नहीं हो सकतीं। बस यहीं से समस्याएं शुरू होती हैं। पहली समस्या तो यह है कि दूसरे प्रकार की आवश्यकता भी है, ज्यादातर को इसकी समझ नहीं है या फिर वे चीजों का लेन–देन कर दूसरे प्रकार की आवश्कताएं पाना चाहते हैं। विश्वास, सम्मान या प्रेम तराजू में तौलकर तो मिलता नहीं। आदमी सोचता है, वह ज्यादा पैसा या नाम कमा लेगा तो लोग उसे प्रेम करने लगेंगे या सम्मान होगा। इसलिए हर कोई शोषणपूर्वक पर धन कमाने में लगा है। यही भ्रष्टाचार है।

इसका कारण समझने जाते हैं तो पता चलता है कि शरीर एक दिन नष्ट हो जाने वाली चीज है, इसलिए इसका काम क्षणभंगुर चीजों जैसे, रोटी, गाड़ी, मकान आदि से चल जाता है जबकि जीवन नाम की एक वास्तविकता और है जो शरीर को चलाते हुए शरीर के साथ भी रहती है और शरीर के बाद भी। उसका काम निरंतर और असीमित वस्तुओं से ही चलता है जैसे प्रेम, विश्वास, सम्मान आदि। रोटी खाने से शरीर तृप्त हो जाता है लेकिन जीवन केवल संबंध और ज्ञान से तृप्त होता है।

एक और वास्तविकता दिखती है। दुनिया का हर आदमी संबंधपूर्वक सुखी होकर ही जीना चाहता है। दूसरे को भी सुखी करना चाहता है, जिसे अपना संबंधी मानता है, उसका पोषण और सहयोग भी करता है। जिसे संबंधी नहीं मानता उससे भयग्रस्त रहता है। इस स्थिति में यदि कमजोर साबित होता है तो खुद शोषित होता है और यदि बलशाली है तो शोषण करता है। वर्तमान व्यवस्था में नीचे से उपर तक यही हो रहा है।

छोटा कर्मचारी जनता का शोषण करता है और बड़ा अधिकारी, छोटे कर्मचारी का। इस पूरी अव्यवस्था का कारण आदमी का भयग्रस्त होना है।

क्योंकि नासमझ आदमी सदा से ही प्राण भय, मान भय, धन भय और पद भय से पीड़ित रहा है। वह हर भय से मुक्ति चाहता है। इसके लिए उसने शस्त्र, शास्त्र, जन, धन एकत्र कर सुरक्षा घेरा मजबूत करने की कोशिश की है। इनके बल पर हिंसक जानवरों और प्राकृतिक आपदाओं से तो कुछ भयमुक्ति पा ली पर आदमी की अमानवीयता का भय अभी भी बड़ी समस्या बना हुआ है। वर्तमान में आम आदमी को पुलिस का भय इसका बड़ा उदाहरण है। कुछ ऐसी ही स्थिति उन नजदीकी लोगों की है जो पड़ोसी या संगी–साथी कहे जाते हैं। कब कौन मन में ईर्ष्या पाल ले, कब अपमानित कर दे, कब नुकसान पहुंचा दे, कहा नहीं जा सकता। इससे बचने के लिए ही हर आदमी शस्त्र, शास्त्र, जन, धन एकत्र करने में जुटा है। इसी के लिए पूरी छीना–झपटी है। जो भ्रष्टाचार के रूप में दिखता है। अविश्वास, रिश्तों में टूटन, नैतिक पतन और भय का वातावरण इसके लक्षण हैं।

मौजूदा व्यवस्था और कानून रूपयों या धन के लेन–देन होने के बाद की स्थिति को भ्रष्टाचार मानते हैं जबकि यह घटना भ्रष्टाचार का फलन मात्र है। भ्रष्टाचार तो उससे बहुत पहले प्रवृत्ति के रूप में आरंभ हो चुका होता है। फिर भी सारा प्रयास कानून और दंड के भय से भ्रष्टाचार रोकने का है। बहुत सारी उर्जा और संसाधन लगाने के बाद, इसमें थोड़ी–बहुत कमी अवश्य दिखती है पर खत्म हो गया हो, ऐसा पूरी दुनिया में कहीं नहीं दिखता।

इनके विकल्प के रूप में ही चेतना विकास मूल्य शिक्षा का प्रस्ताव है। यह प्रस्ताव मानव पर किये गये गहन अनुसंधान का परिणाम है। यह अनुसंधान किया है अमरकंटक निवासी दार्शनिक 93 वर्षीय अग्रहार नागराज ने। अनुसंधान का निष्कर्ष है कि इसका उपाय केवल संबंधों की पहचान होना ही है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिन्होंने इस प्रस्ताव को सुनने के बाद अपने आस–पास की भ्रष्ट व्यवस्था को बदल दिया या फिर उस अव्यवस्था के समानांतर ईमानदार व्यवस्था खड़ा करने में लगे हैं।

- अजय यादव

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

मानव धर्म की व्याख्या

अस्तित्व में हर इकाई धर्म सहित ही है। इकाई से उसके धर्म को अलग नहीं किया जा सकता है। इकाई का आचरण ही उसके धर्म को व्यक्त करता है या इकाई का धर्म आचरण के रूप में प्रकट है, प्रमाणित है। जैसे भौतिक वस्तुओं का धर्म अस्तित्व अर्थात होना है। प्राणावस्था यानी वनस्पति जगत का धर्म अस्तित्व सहित पुष्टि अर्थात होना और पुष्ट होना है। इस प्रकार हर इकाई का आचरण निश्चित है, जिसके कारण अस्तित्व में उसकी उपयोगिता और भागीदारी है। आचरण की निश्चितता ही इकाई की उपयोगिता है, जैसे लोहा, पत्थर, गाय, कुत्ता आदि, इन सबका आचरण हर देश व काल में निश्चित है। अस्तित्व में हर प्रजाति की वस्तुओं का धर्म तथा आचरण निश्चित है। इसी तरह मानव जाति का भी धर्म एक है और जब धर्म एक है तो आचारण भी एक सा ही होना चाहिए।

धर्म के प्रति अनभिज्ञ होने के कारण मानव का आचरण अनिश्चित हो गया। मानव समझपूर्वक ही धर्म को पहचानता है तथा आचरण के रूप में प्रमाणित करता है। विगत में आध्यात्मिक या भौतिकवादी विधि से मानव का आचरण निश्चित नहीं हो पाया, जिसका कारण अस्तित्व का अध्ययन नहीं होना है। जबकि मानव स्वयं में एवं परस्परता में निश्चित आचरण की चाहना एवं कामना करता रहा है। मानवीयतापूर्ण आचरण ही मानव का निश्चित आचरण है जो सबके लिए वांछित है, वह चाहे गरीब हो, अमीर हो, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो। प्रचलित धर्मग्रंथों व गुरूओं से सार्वभौम आचरण निकलकर आया नहीं। सभी धर्मों में धर्म के नाम पर कुछ पूजा–उपासना पद्धतियों, कुछ प्रतीक चिह्न आदि प्रचलित हैं किंतु आचरण के रूप में एक–दूसरे के विरोधाभासी दिखते हैं। इसके कारण मानव जाति कई संप्रदायों में बंट गयी।

किसी इकाई के धर्म का अर्थ है, इकाई का व्यवस्था में होना। मानव धर्म व्यवस्था में जीने पर ही प्रमाणित होता है। फिर समग्र व्यवस्था में भागीदार होता है। मानव धर्म समझ में आने पर मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित होगा। मानवीय आचरण में जीता हुआ मानव ही मानव धर्म में प्रतिष्ठित होता है। मानव धर्म सुख, शांति, संतोष, आनंदपूर्वक जीना ही है। हर मानव सुख की आशा सहित ही है और यही मानव धर्म है।

मानवीयतापूर्ण आचरण तीन भागों में व्याख्यायित होता है, मूल्य, चरित्र, नैतिकता। परस्पर संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह तथा उभयतृप्ति ही मूल्य के रूप में है, जिससे परिवार में व्यवस्था प्रमाणित होती है। चरित्र का स्वरूप है स्वधन, स्वनारी–स्वपुरूष एवं दयापूर्ण कार्य व्यवहार। इससे मानव सामाजिक होता है। नैतिकता का स्वरूप है धर्मनीति तथा राज्यनीति, जिसकी व्याख्या तथा प्रमाणित होने से अखंड समाज का स्वरूप प्रमाणित होता है।

- बी आर अग्रवाल

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

मानव जाती, मानव धर्म

मानव धर्म के बारे में, तीन आशय समाहित हैं| विकसित चेतना में जीता हुआ मानव, देव मानव, दिव्य मानव का अध्ययन है | चेतना के सन्दर्भ में चार भाग में अध्ययन है: जीव चेतना, मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना | जीव चेतना विधि से सम्पूर्ण अपराध मानव कर्ता हुआ देखने को मिला, उसका गवाही शिक्षा में लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद ही शिक्षा | हर अभिभावक अपने संतान को सुशील देखना चाहता है, हर देश काल में| उक्त प्रकार के तीनो उन्माद का शिक्षा देते हुए सुशील रहना कितना संभव है, हर अभिभावक सोच सकते है| विकसित चेतना के प्रमाण में यही आचरण में पाया जाता हैं की समाधान, समृद्धी, अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण है | सहअस्तित्व में अनुभव का यह प्रमाण हैं| सहअस्तित्व (*'अस्तित्व', 'जो भी हैं'*) अध्ययनगम्य हो चुकी है| ऐसे सहअस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से सोचा गया विचारों का प्रमाण, नियम-नियंत्रण-संतुलन; न्याय-धर्म-सत्य रूप में व्यवहार में प्रमाणित होता हैं|
अनुभव मूलक विचार शैली सम्मत व्यवहार में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में प्रमाणित होता हैं| इसे जीके, प्रमाणित करके देखा हैं| जिसका प्रयोजन अखंड समाज-सार्वभौम व्यवस्था है| इसके लिए ऊपर कहे गए आचरण विधि से वर्तमान में विश्वास होना होता है, फलस्वरुप अखंड समाज होता है| अखंड समाज व्यवस्था ही '१० सोपनीय विधि' से परिवार सभा मूलक व्यवस्था होता है| यही सार्वभौम व्यवस्था है| यही विकसित चेतना का फल परिणाम है जिसमे भागीदारी हर व्यक्ती का होना होता है|

- व्यक्ती में समाधान
- परिवार में समाधान, समृद्धी
- समाज में अखंडता
- व्यवस्था में सार्वभौमता

सहज प्रमाण ही भ्रम मुक्त, अपराध मुक्त मानव का स्वरुप है| इस प्रकार के मानव तैयार होना ही, इस प्रकार से नर नारी तैयार होना ही अपराध मुक्त, भ्रम मुक्त मानव जात का पहचान है| मानव जाती एक होने के मूल में काले, भूरे, गोरे और विभिन्न नस्ल समेत पाए जाने वाले मानव जात में खून के प्रजातियों का समानता के आधार पर, शरीर रचना में समाहित हड्डियों क्र आधार पर, अंग और अव्व्यों के आधार पर एक होना, इन सबका संयुक्त रूप में नाखून, दांत, के बनावट तीखे होना, खून के प्रजातियां निश्चित होना और आतों में मांसाहारी जात के जीवों का आंते छोटे होना, शाकाहारी जीवों के आंते लंबी होना, इन्ही आधारों पर मानव जाती एक होना अध्ययनगम्य हो चुकी है| मानव सुख धर्मी है, समाधान ही मानव धर्म है| समाधान समझदारी से होता है, समाधान से ही मानव सुख का अनुभव कर्ता है, यही मानव धर्म है| यह अध्ययनगम्य हो चुकी है| छत्तीसगढ़ स्कूल शिक्षा विभाग इसे अध्ययन कर रहा है| इस प्रकार शरीर रचना के आधार पर मानव जाती एक है, एवं समाधान (समझदारी) के आधार पर मानव धर्म एक है (सुख)| इसी के आधार पर मानव जाती एक, धर्म एक होने का प्रतिपादन २३ अप्रैल २०१२ को होगी| मानव जाती एक, धर्म एक होने के आधार पर अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में 'मानव मंदिर' का स्थापन ग्राम करौली, कानपूर, उत्तर प्रदेश में हुआ है| जय हो, मंगल हो, कल्याण हो !

- **ए नागराज,** प्रणेता, मध्यस्थ दर्शन - सह-अस्तित्ववाद , अमरकंटक, जि अनूपपुर, म.प्र. भारत

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

मानव धर्म एक, मानव जाति एक

मानव धर्म एक, मानव जाति एक। अब से पहले प्रमाणपूर्वक ऐसा वचन नहीं कहा गया था। मध्यस्थ दर्शन के प्रणेता अमरकंटक निवासी 93 वर्षीय दार्शनिक अग्रहार नागराज ने अनुसंधानपूर्वक संपूर्ण अस्तित्व को समझा। इसी में मानव का भी अध्ययन हुआ। इसी आधार पर मानव के बारे यह निष्कर्ष निकला। इसे हर मानव स्वयं जांच सकता है और समझ सकता है। सभी को समझने के लिए इसे विकल्प विधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है

ज्ञानगोचर दृष्टि से देखने पर जीवन समझ में आता है। इसके बाद यह भी समझ में आता है कि दुनिया का हर मानव सुखी रहना चाहता है। इसलिए सुखधर्मी है। यही मानव का धर्म है। शरीर दृष्टिगोचर विधि से दिखता है। शरीर के आधार पर संपूर्ण मानव जाति एक है। मानव को देखने से जीवित दिखता है। प्रत्येक मानव, प्रत्येक मानव को जांच सकता है। जीवित रहना ही मानव की संज्ञा है। शरीर ही मरता है, शरीर ही जन्मता है। यह प्रजनन विधि से होता है। प्रजनन विधि प्राणकोशाओं से संबंधित है।

शरीर के साथ जाति का संबंध है

शरीर विभिन्न जलवायु में, विभिन्न प्रकार के नस्ल–रंग के साथ अवतरित होना देखने को मिल रहा है। साथ ही नस्ल, रंग के साथ ज्ञानाभ्यास और कर्माभ्यास, इन दोनों के योगफल में जातियों की गणना होना अभी तक मानव परंपरा में प्रचलित है जबकि मानव सभी स्थितियों में मानव ही है। इस आधार पर निर्णय लिया जा सकता है कि सभी समझ सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं। यह एक आधार पर मानव जाति एक है। इसे सब समझ सकते हैं। इसके लिए 23 अप्रैल को कानपुर में सर्व धर्म सम्मेलन निर्धारित हुआ है।

मानव धर्म एक

मानव स्वयं में अथवा सर्व मानव जीवन और शरीर के रूप में वैभवित रहना पाया जाता है। अभी तक मानव व्यक्तिवाद, समुदायवाद के साथ जीया है। अभी तक जो भी धर्म कहा, वह सामुदायिक को कहा, यह एक दूसरे से मिला नहीं। इसलिए यह सीमा सुरक्षा बना है। धर्मयुद्ध जैसे शब्दों से युद्ध में भी धर्म को बताया जाता है। युद्ध और धर्म का क्या ताल्लुक है? युद्ध और संघर्ष मुक्त विधि से ही मानव धर्म का प्रयोजन है। यह मानव जीकर प्रमाणित कर सकता है। हर देशकाल में यह तीन स्तर पर पहचाना जाता है। पहला जीवनमूलक विधि से पहचान, दूसरा विचार मूलक विधि से प्रमाण और तीसरा व्यवहारमूलक विधि से प्रमाण।

अनुभवमूलक प्रमाण को समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व के रूप में देखा। विचारमूलक प्रमाण को नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य के रूप में होना पाया। व्यवहारमूलक प्रमाण स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार है। ये तीनों ही मानव के स्वरूप में हैं। इसे समझने से स्पष्ट हो जाता है कि मानव धर्म एक और मानव जाति एक है।

- ए नागराज

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

मानव का मूल्य

दुनिया का एक–एक मानव सुखी होकर जीना चाहता है। यही मानव की मूल चाहत है। हर कोई इस चाहत को पूरा करना ही चाहता है। जीवन विद्या यानी जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचारण ज्ञान, यदि समझ में आता है तो सुखी होने का रास्ता बनता है। इसमें ही सर्वशुभ का आधार है। सबके निरंतर सुखी होने का स्रोत है। समाधानित रहने का प्रमाण है। ये सब चीजें अपने आप से उद्‌गमित होते हैं। हर मानव ऐसा ही चाहता है। अकेले कोई होता नहीं, इससे ये सिद्धांत निकलता है। इस धरती के संबंध को छोड़कर कोई मानव सुखी होने का प्रयत्न करे तो हो नहीं सकता। पानी से संबंध छोड़कर सुखी कोई हो नहीं सकता। किन्हीं भी चीजों के संबंध को छोड़कर हम सुखी नहीं हो सकते तो मानव या जीवन संबंध को छोड़कर कैसे जी पायेंगे? मनुष्य कैसे यांत्रिक हो जायेगा? भावनात्मक संसार से कैसे मुक्ति पायेगा? आप ही सोचो ये कैसे हो सकता है? हम बाजार में जाते हैं, सब्जी, अनाज, सोना, लोहा, सबका भाव पूछते हैं, उस भाव का दृष्टा कौन है? मनुष्य ही होता है। जब सबका भाव है तो मनुष्य का भी भाव होगा। मनुष्य के भाव का पता लगाना ही पहली आवश्यकता है, पर विडंबना देखिये मानव ने अपने ही भाव को छोड़कर सबका भाव पकड़ लिया। जिनसे लाभ का मौका मिला, उन सभी भावों को पकड़ लिया जबकि मनुष्य का भाव यानी उसका मूल्य समझ लें तो लाभ–हानि से मुक्त हो जायेंगे, क्योंकि मानव मूल्य समझने से, जीवन मूल्य समझने से, स्थापित मूल्य समझने से, शिष्ट मूल्य समझने से हमको लाभ–हानि की आवश्यकता शून्य हो जाती है। समझदारी आने पर हर व्यक्ति के साथ ऐसा ही होता है। सोचो, जरा ऐसा होने पर संसार की छाती का कितना बड़ा बोझ हल्का हो सकता है। लाभ–हानि के चक्कर में आदमी न तो अपने को बचाता है, पराया बचाना ही नहीं। इसी चक्कर में सबका कत्ल, सब चकनाचूर करना होता है। इस झंझट से मुक्ति तो इसी विधि से आता है कि मानव मूल्यों को समझने में समर्थ हो जायें। उसके पहले यह होने वाला नहीं है। जीवन विद्या समझ में आने से, अस्तित्व, सहअस्तित्व के रूप में समझ में आने से और मानवीयतापूर्ण आचरण में विश्वास होने से मानव मूल्य चरितार्थ होता है। यही ज्ञान है।

-ए नागराज

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

समझदारी ही सुख

समझदारी से ही कल्याण होगा। समझदारी से ही सुखी, समृद्ध होते हैं। समझदारी में वर्तमान में व्यवस्था के रूप में जीते हैं। तभी सह–अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। सुख के चार चरण हैं, समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व। यानी हर मानव में समाधान, परिवार में समृद्धि, समाज में अभय और अस्तित्व में सह–अस्तित्व। ये चारों चीजें आती हैं तो हम सुखी हो जाते हैं। जब तक ये चारों चीजें नहीं आती हैं तब तक हम प्रयत्न करते रहते हैं। यह सदा–सदा से हो ही रहा है। इस प्रयत्न के क्रम में ही हम तमाम जप–तप, पूजा–पाठ, योग–यज्ञ कर डाले हैं। बहुत सारी चीजें, धन–संपदा भी इकट्ठा किये हैं, किंतु इससे सब लोग तो सुखी नहीं हुए। एक ही परिवार के सब लोग सुखी नहीं हो पाते हैं। ऐसा ही समाज में देखने में आता है। सभी के सुखी होने के लिए सभी का समझदार होना आवश्यक है। ऐसा होता नहीं कि एक व्यक्ति ज्ञानी हो जाये और सबको तार दे। हर व्यक्ति को सुखी होना है तो फिर समझदार होना ही होगा। अवसर यह है कि समझदारी सबमें पहुंचाया जा सकता है। समझदारी के लिए पहला चरण है अस्तित्व को समझना। अस्तित्व चार अवस्था में है। पहला पदार्थावस्था, जिसमें मिट्टी, पाषाण, मणि, धातु आदि हैं। ये सब अपने आचरण में प्रमाणित हैं हीं। दूसरी प्राणावस्था जिसमें सभी वनस्पतियां, औषधियां हैं। ये सब भी अपने आचरणों में स्वयं प्रमाणित है। तीसरी जीवावस्था जिसमें मनुष्य को छोड़कर सभी जीव–पक्षी आते हैं। ये सभी भी अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हैं हीं। चौथी ज्ञानावस्था है जिसमें केवल मनुष्य है, जिसको व्यवस्था में होने में अभी प्रतीक्षा है। अब सोचिये सबसे विकसित अवस्था सबसे पीछे है। क्या मतलब है इसका? ऐसा जीने–रहने पर दुख नहीं होगा तो क्या होगा?

इसलिए बात की जा रही है समझदारी की। तभी व्यवस्था में जिया जा सकता है और तभी सुखी रहा जा सकता है। हमारा चरित्र भी विकसित के रूप में होने की आवश्यकता है। आचरण के रूप में हर वस्तु अपनी व्यवस्था को प्रमाणित करते हैं। मानव भी अपने आचरण में व्यवस्था को प्रमाणित करेगा। इसकी संभावना भी है, प्रयास भी हैं। इसी के बाद मानव का सुखपूर्वक व्यवस्था में जीना और उसकी परंपरा बनना निश्चित होगा।

- ए नागराज

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

जीवन विद्या

मानव मूल्य जब हम चरितार्थ करना शुरू करते हैं, तभी हम सही करने में समर्थ, पारंगत होते हैं। तब तक किसी न किसी उन्माद में जकड़े ही रहते हैं और हमको सही करने का कोई रास्ता मिलता नहीं। इसे ही नासमझी और भटकना कहा है। यही समस्या और दुख के रूप में दिखाई देता है। कोई दुखी होना नहीं चाहता, इसलिए छटपटाता है। समझदार होने के लिए जीवन तथा अस्तित्व को समझना ही विकल्प है। इसके बिना समझदारी होती नहीं। यही जीवन विद्या है। विद्या के दो भाग हैं ज्ञान और दर्शन। इन दोनों का धारक–वाहक जीवन ही है। जीवन ज्ञान का मतलब जीवन की जीवन को समझने की प्रक्रिया से है। जीवन ही जब अस्तित्व को समझता है तब इस प्रक्रिया को अस्तित्व दर्शन कहा। सभी जीवन समान हैं और सारे मनुष्यों में जीवन एक समान है। जीवन की जीवन को समझने की विधि में, प्रमाणित करने की विधि में, अस्तित्व को समझने की विधि में, सहअस्तित्व को प्रमाणित करने की विधि में यह आया कि सभी जीवन समान हैं।

समझने की व्यवस्था शरीर में हाथ–पैर, कान–नाक, चक्षु, मेधस, हृदय कहीं भी नहीं है। अभी तक यह भी बड़ी झंझट रही है कि समझने वाला मस्तिष्क ही होता है, कई लोग इस पर बहस तक करते देखे जाते हैं पर जरा सी गहराई से देखने पर ही पता चल जाता है कि यह व्यवस्था जीवन में ही है। जीवन ही जीवन को और अस्तित्व को समझने वाली वस्तु है और दूसरा कोई समझेगा नहीं। इस ढंग से निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य समझदारी व्यक्त करने के लिए, समझदारी प्रमाणित करने के लिए, शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में होना जरूरी है। यह केवल शरीर या केवल जीवन रहने पर नहीं होगा। प्रमाणित करने का केंद्र बिंदु हुआ व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना। यही समझदारी की सार्थकता है। हम सब व्यवस्था में जीना ही चाहते हैं, यह प्रक्रिया जीवन सहज ही है, यह कोई लादने वाली चीज नहीं है। अस्तित्व को समझने के क्रम में अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व है क्योंकि सत्ता यानी व्यापक में डूबी, भीगी, घिरी प्रकृति ही संपूर्ण अस्तित्व है।

- ए नागराज

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें

जीवन का स्वरूप

जीवन गठनपूर्ण परमाणु है, चैतन्य इकाई है। इसीलिए इसमें संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का होना पाया जाता है। यह प्राकृतिक विधि से होता है। इसे अभी तक कोई बनाने वाला, बिगाड़ने वाला है, ये झंझट रहा ही है। इसे लेकर अनेकों मान्यताएं प्रचलित हैं हीं। इसी आधार पर मनुष्य सोचता है, हम भी बना सकते हैं, बिगाड़ सकते हैं। यही आधुनिक विज्ञान का मूल आधार है। बना सकने, बिगाड़ सकने के झंझट में पड़ने के कारण काफी कुंठाएं आ चुकी हैं। हर स्तर पर विरोध है। कुछ देश कहते हैं, हम एटम बम बना सकते हैं, कुछ नहीं बना सकते इसलिए ये समानता का कोई अर्थ ही नहीं हुआ, क्योंकि समानता अस्तित्व सहजता में है। अस्तित्व जो है सहअस्तित्व सहज है। असहजता से हम कुछ भी करते हैं, कहीं न कहीं उसका विरोध होता ही है। उसके फल परिणाम भी विरोधभासी होते हैं। जैसे व्यापार, वह इसी कारण लाभोन्मादी हो गया और इस कारण ज्यादा–कम वाला पिशाच पीछे पड़ गया। एक आदमी सोचता है कम है, दूसरा आदमी सोचता है, ज्यादा है और झगड़ा बना ही रहता है। इस तरह किसी भी मनुष्य का स्वस्थ रूप में सुखी होकर कहीं जीना बना नहीं। हर कोई इसी अव्यवस्था का शिकार हो गया है। इसलिए स्वस्थ रूप में जीने के लिए हर मनुष्य को मूल्य और मूल्यांकन विधि से जीना होगा। उसका पहला चरण समझदारी, दूसरा चरण है ईमानदारी, तीसरा चरण है जिम्मेदारी, चौथा चरण है भागीदारी। इन चार चरणों में मानव को अपनी समझदारी को प्रमाणित करना है।

समझदारी के अर्थ में तीन चीजें हैं जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान। जीवन नित्य है, सुखाकांक्षी है और सुख को मानव परंपरा में ही प्रमाणित कर सकता है। इसके लिए प्रयत्न करने का पहला मुददा है जीवन को समझना, जिसका नाम है ''जीवन विद्या''। विद्या का धारक–वाहक जीवन है। विद्या के स्वरूप में तीन भाग होते हैं। विद्या, विद्वता और विद्वान। संपूर्ण अस्तित्व ही विद्या है, इस अस्तित्व में जीवन भी अविभाज्य है। जो भी समझदारी होती है वह जीवन में ही होती है, यही विद्वता है। इसलिए विद्वान मनुष्य ही होता है। इसलिए संपूर्ण सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व ही समझने की वस्तु है। यही विद्या है। इसे समझे बिना मानव तृप्त नहीं हो सकता क्योंकि सब कुछ को समझे बिना प्रश्न बने ही रहते हैं, ये प्रश्न मनुष्य को शांत नहीं रहने देते, इनका उत्तर पाकर ही मनुष्य शांत होता है, फिर प्रमाणित करता है, यही तृप्ति है।

-ए नागराज

अधिक जानकारी के लिए www.madhyasth.info देखें